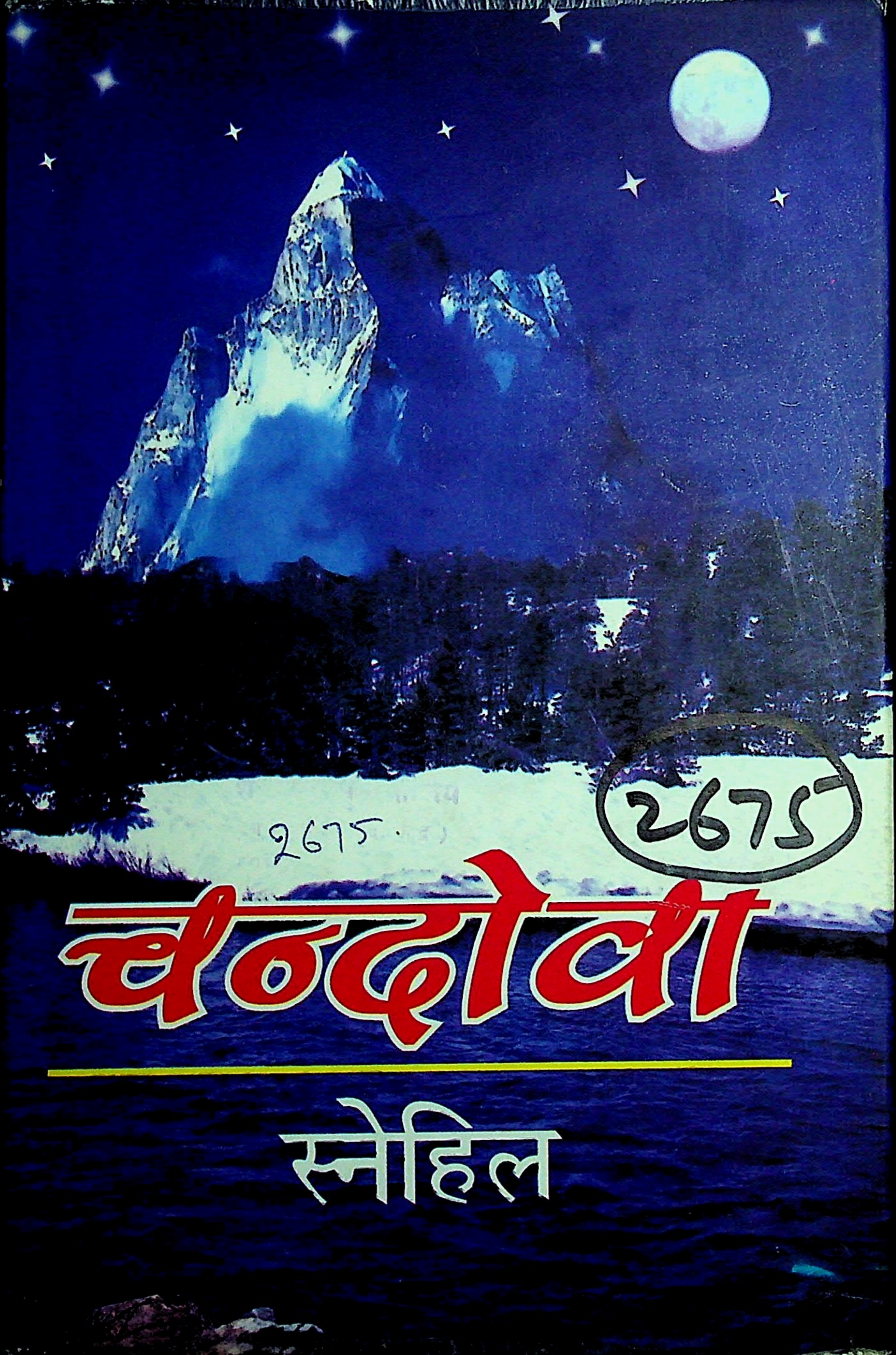

2675

2675.

चन्दोवा

स्नेहिल

આદરણીય સુષ્મા શર્મા જીને

સાદર સમર્પિત

21.02.05

चन्दोवा

[illegible]

31.12.2004.

Very best contribution
Keep it up

KNPathak
31/12/04

Vice Chancellor
Punjab University
Chandigarh

Chandigarh Tribune

Chandigarh : Saturday, January 1, 2005 www.tribuneindia.ocm

Relief Fund.

Book release: On the eve of retirement of Ms Vimal Bhargava, founder-principal of Dev Samaj College for Women, Sector 45, a book release function of her husband and son-in-law was held in the school premises. Vice-Chancellor of Panjab University, Dr KN Pathak, released the poetry books titled 'Chan ova' by Mr CM Bhargava, husband of the principal and Mr Manish Talib, son of the principal. Mr KL Zakir, Chairman of Jan Shiksha Sansthan was also present on the occasion.

ChandigarhNewsline

Vol XII No. 71 CHANDIGARH | SATURDAY | JANUARY 1, 2005

ious relief funds to help the recent tsunami victims.

Poetry books released

■ Two books titled *'Chandova'* by C.M Bhargav Snehil and *'Sargoshian'* by Manish 'Talib' were released on Friday by Panjab University Vice-Chancellor Prof K.N. Pathak and chairman of Jan Shiksha Sansthan K.L Zakir at the Dev Samaj College for Women, Sector 45. *'Chandova'* (meaning moons protective shade) is a collection of poems that touches upon various social issues and displays myriad hues of female psyche, love and nature's glory. And *'Sargoshian'* is an effort in Hindi-Urdu literature in which Talib has spoken about the pain felt in everyday life in the form of short poems and couplets.

HT Chandigarh Live

Saturday, January-1, 2005

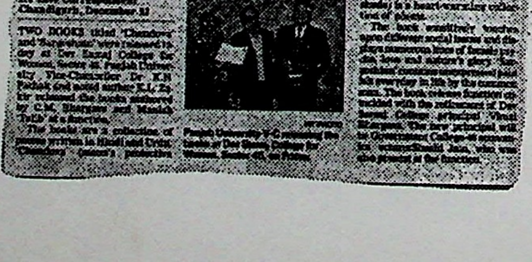

V-C releases two poetry books

HT Live Correspondent
Chandigarh, December 31

TWO BOOKS titled 'Chandova' and 'Sargoshian' were released today at Dev Samaj College for Women, Sector 45. Panjab University Vice-Chancellor Dr K.N Pathak and noted author K.L Zakir released the books authored by C.M. Bhargava and Manish 'Talib' at a function.

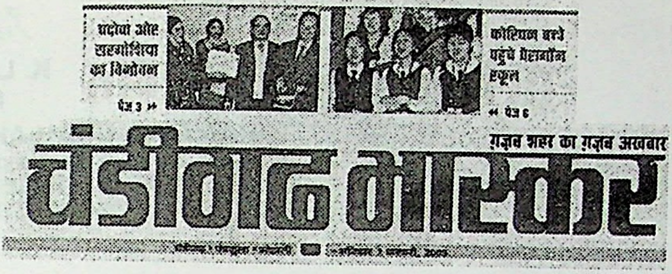

चंदोवा और सरगोशियां का विमोचन

पेज 3 ▸▸

कोरियन बच्चे पहुंचे पैरागॉन स्कूल

◂◂ पेज 6

ग़ज़ब शहर का ग़ज़ब अखबार

चंडीगढ़ भास्कर

चंडीगढ़ • पंचकूला • मोहाली

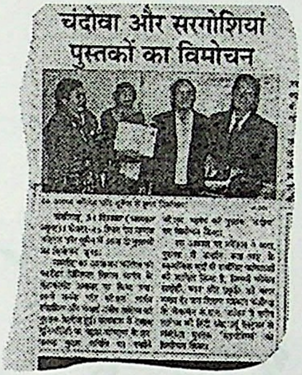

चंदोवा और सरगोशियां पुस्तकों का विमोचन

चंडीगढ़ केसरी

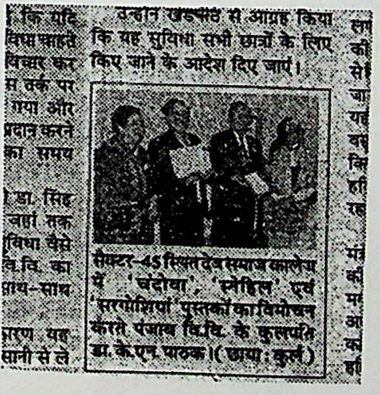

है कि यदि
विधा चाहते
विचार कर
स तर्क पर
गया और
प्रदान करने
का समय

डा. सिंह
जहां तक
सुविधा जैसे
वि.वि. का
साथ-साथ

कारण यह
सानी से ले

उन्होंने उपकुलपति से आग्रह किया कि यह सुविधा सभी छात्रों के लिए किए जाने के आदेश दिए जाएं।

सैक्टर-45 स्थित देव समाज कालेज में 'चंदोवा', 'स्नेहिल' एवं 'सरगोशियां' पुस्तकों का विमोचन करते पंजाब वि.वि. के कुलपति डा. के.एन. पाठक। (छाया : कुर्ल)

کشمیری لال ذاکر
K. L. ZAKIR
Secretary
HARYANA URDU AKADEMI
431, Sector 2, Panchkula-134112.
Phone : 0172-2561412 (O)
2604391, 2605263 (R)

प्रियवर को शुभकामनाओं सहित
[illegible] अर्पित है।

31.12.2004

चन्दोवा

'स्नेहिल'

2675

स्टार पब्लिकेशंस प्रा. लि.

ISBN : 81-7650-191-3

© स्नेहिल

मूल्य : 125/-

प्रथम संस्करण : 2005

प्रकाशक :
स्टार पब्लिकेशंस प्रा. लि.
4/5-बी, आसफ अली रोड
नई दिल्ली - 110 002
भारत

लेज़र कम्पोज़िग :
आर. एस. प्रिंट्स, नई दिल्ली-110049

मुद्रक :
एक्सल प्रिन्ट्स, दिल्ली

'SNEHIL'
Chandova
Poetry, 2005

प्रस्तावना

काव्य को सभी जीते हैं–जीवन की रोज़मर्रा जिन्दगी में बहते चले जाते हैं–और कुछ उसी घटनाक्रम या कलवत् जीवन शैली को महसूसते हैं और कुछ अन्य ऐसे होते हैं जो महसूसते भी हैं और उसकी अभिव्यक्ति भी करते हैं। जीना काव्य है, महसूस करना साधना तो फिर उसे शब्द देना, भाषा देना, काव्य–कृति है।

जो भी व्यक्ति लिखता है, उसमें जो उसने पढ़ा, गढ़ा और अनुभव किया और जिसका उसकी समस्त विचार–धारा और जीवन शैली पर प्रभाव पड़ता है, उसकी लेखन प्रक्रिया पर भी उसका प्रभाव अछूता नहीं रह सकता। परन्तु संवेदनशीलता समस्त जीवन प्रक्रिया को अंगीकार करती है और फिर फूट पड़ता है वो अजस्र स्त्रोत जिसकी मार्मिकता पंतजी ने "उमड़ कर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान" कहकर समाहित कर दी ! पूरी की पूरी लेखन प्रक्रिया पर प्रभाव रहा है छायावादी कवियों, यथार्थवादी हस्ताक्षरों तथा प्रयोगवादी–विशेषतया अज्ञेयजी का।

कविता लेखन का सफ़र कोई आज की वीथिका नहीं–यह वीथि तो उजागर हुई सन् 1964 में जब महाविद्यालय में गणित में प्राध्यापन किया। कालेज के दिनों में भी काव्य में एक विशेष अभिरूचि, आकर्षण, तथा लगाव रहता था, चाहे वो अंग्रेजी काव्य हो या फिर हिन्दी। "वातायन" इसी पथ के कुछ पुष्प हैं जो सन् 64 से 66 तक चुने और इस भाग में संकलित किया है।

फिर यात्रा थम सी गई। जीवन के थपेडे, झंझाएँ और ज्वार भी आए और दुख सालता है, सो उस में तपते रहे–परन्तु तपन को भीतर ही भीतर संजोए रहे–अंगीकार कर पीते रहे और एक लम्बा सा अन्तराल जो फिर जीवन्त हुआ सन् 1979 में, जिसकी गति निर्बाध रही 1985 तक। इस समायावधि में लिखा, काफी लिखा और उसमें से संचयित कुछ अंश हैं "चन्दोवा" में–जीवन के अनुभूत्यात्मक स्तर पर।

फिर पड़ाव आया। ठहर से गए–सामाजिक कम परन्तु व्यवसायिक तथा कार्यालय हेतु दायित्व अधिक तथा गुज़रा कुण्ठाओं के दौर से और पीया गरल–जीया–जी कर कुण्ठाओं के दौर से और पीया गरल जीया –जी कर उठे पुनः। खैर, व्योम की ओर उन्मुख हुए और उत्तरांचल एवं पूर्वांचल ने सराबोर कर दिया–अणु अणु रोमांचित हो गया और हिम–वृष्टि–हुई एक रिक्त, निर्जन, ठूठ उतुंग शिखर पर–जिसकी पुट में है समावेश नैनीताल, कौसानी, चौकोड़ी, डीडीहार, अल्मोड़ा, दार्जिलिंग, गंगटोक. . . की विस्तीर्ण हृदय स्पर्शी हिम–श्रृंख्ला। 'व्योम' इसी पृष्ठ भूमि की 1993–2000 तक की कुछ

चयनित रचनाएँ हैं।

नीड़ तो होता ही है नीड़-घरौंदा-जिसके बिना यह सब शायद सम्भव ही न हो। 'प्रेयसि' हृदय का स्पन्दन होती है और पत्नि यदि उसी से एकाकार हो जाए तो गति के उछाल में सौम्यता आ जाती है-उसका प्रभाव केवल अनुभव की वस्तु है-कल्पनातीत। उसमें रह रह कर उभरती है नायिकाएँ-चाहे वो 'उसपार' की लवंगलता' हो या फिर शेक्सपीयर की 'मिरान्डा' या कॉलरेज की 'जैनीवीव'!! उद्यान में खिली कलिकाएँ जिन्होंने जीवन को उद्देश्य दिया-उनके विषय में तो स्वतः ही भाव उभरते हैं-"नीड़" कुछ इन्हीं कृतियों की एक विहंगम दृष्टि है।

प्रश्न-जब इतना लिखा तो प्रकाशन क्यों नहीं?

एक भरी-पूरी चालीस वर्ष की काव्य-यात्रा और ताक पर। व्यवसाय के दायित्व के कुछ दायरे होते हैं-कुछ स्तर, कुछ मापदण्ड, परन्तु फिर भी एक स्तर पर जाकर आपका आंकलन किया जाता है, महज़ प्रभाव पर जो आप अपने उच्चाधिकारियों पर छोड़ते हैं और उच्चाधिकारी तो भाग्य ही निश्चित करता है-भाग्यवश यदि अधिकारी की ग्राह्यता एवं मानसिक परिवेश संतुलित एवं सकारात्मक है तो सभी क्रम और क्रिया-कलाप का लेखा जोखा एक स्वस्थ दृष्टिकोण से आंका जाता है-अन्यथा "सत्ता के गलियारों" में जो विकृत टिप्पणियां की जाती हैं- "ओ, सर जी, छोड़ो ना-वो काम क्या करेंगे-उन्हें कविताओं से फुर्सत मिले तब ना।" और आपकी पूरी निष्ठा, कर्तव्य-परायणता, ओजस्विता एवं लगन धरे धराए रह जाएँ और आपकी सोपान को आपके जूए पर रखकर ही चढ़ जाएंगे अवसरवादी, जो "साम, जाम, दाम, भेद" के साथ कुछ भी खिलवाड़ कर जाएँ। यही कारण है मुख्यतया अन्तर्मुखी काव्य यात्रा का जो दबी रही... और अब सेवानिवृति के बाद शुरू की है स्वच्छन्द, स्वतंत्र और स्वायत्त। बीच-बीच में उर्दू के हस्ताक्षरों से अछूते नहीं रहे-सो कुछ गज़लें भी कहीं जिनकी एक झलक मात्र प्रस्तुत है।

और अब-अथ से इति जो अनन्त है, ब्रह्म है। समर्पित उन सभी सान्निध्य में आए स्नेहियों को और स्पन्दन स्रोत को जिन्होंने मुझे कुछ कहने को बाधित किया।

सहर्ष अभिनन्दन सहितए

चन्द्र 'स्नेहिल'
721 सैक्टर 8
पंचकूला (हरियाणा)
134109

दूरभाष : 0172-2563721, 2568256

दो शब्द

आज के कम्प्यूटर के ज़माने में ज़िन्दगी कम्प्यूटर की तरह भागने लगी है। समाज में हर वर्ग की जीवन शैली इस गति से प्रभावित है या यूं कहो कि जीवन जीना एक कला नहीं बल्कि कल (मशीन का पुर्जा) बन गया है। इस शैली में कला का और परिणामत: भावनाओं का कोई स्थान नहीं रहा। हर रिश्ता चाहे कितना भी निकटतम क्यूं न हो, भावना के स्तर पर कम और व्यवसायिक स्तर पर ज्यादा जीया जा रहा है। इतना व्याप्त है यह परिवर्तन कि इससे अछूता रहना असंभव है।

भावनाओं की कोमलता को बनाए रखना, पर्वतश्रृंखला के उज्ज्वल वितान को तहे दिल से महसूसना, नदिया के कलरव या सागर की लहरों से हृदय का गुदगुदाना, बच्चों के भोलेपन को आत्मसात कर भीतर तक स्नेह से ओतप्रोत हो जाना, प्रकृति के हर स्पन्दन से अभिभूत हो उसका आनन्द लेना तथा अपनी कविता के माध्यम से पाठकों तक पहुँचना-काव्य लेखक स्नेहिल की प्रशंसनीय उपलब्धि है। बीमा कम्पनी में कार्यरत रह व्यवसायिक जिम्मेदारियों को निभाते हुए उन्होंने जैसे अपने भीतर की सृजनात्मक-प्रतिभा को संजोए रखा है, उससे आने वाले समय में वह अपने पाठकों को और भी ग्राह्य रचनाएं दे सकेंगे, ऐसी उम्मीद की जा सकती है।

मुझे उनकी प्रेयसि व पत्नि होने का गर्व है-इतना ही कह सकती हूं कि प्यार का जज़्बा केवल महसूस किया जा सकता है, वर्णित नहीं हो सकता पर यह वह जज़्बा है जिसकी गहराई नापना या थाह पाना असम्भव नहीं तो मुश्किल अवश्य है। यह जज़्बा इन्सान के अन्दर की अनुभूतियों को सक्रिय करता है, उसे संवेदनशीन तथा सकारात्मक बनाता है। यह एक ऐसा बीज है जिसे ठीक आबो-हवा मिले तो वह पनपकर वटवृक्ष बन जाता है जिसकी छाया में सैकड़ों पनाह ले सकते हैं। क़ाश। यह छोटा सा प्रयास आज की मशीनी ज़िन्दगी में पढ़ने वाले हर पाठक को कोमल स्पन्दन दे सके, उसके नीरस जीवन को भावनाओं की कोमलता से सरस बना सके।

हार्दिक शुभकामनाओं सहित,

विमल भार्गव
प्राचार्या
देव समाज कॉलेज फार वीमेन,
सैक्टर 45बी, चंडीगढ

अनुक्रमणिका

प्रथम भाग : वातायन

1. तुम और मैं 3
2. तरंग 4
3. आँसू 5
4. परिभाषा 6
5. दर्द की बयार 7
6. दर्द और सत्य 8
7. नव वर्ष 9
8. छाया का आलोक 12
9. मेरा 'मैं' 14
10. अंधकार की आस्थाएँ 15

द्वितीय भाग : चन्दोवा

11. बँधे हाथ 19
12. कर्म 20
13. अव्यक्त भाव 21
14. किसका सत्य 24
15. भाव सरसिज 26
16. दूसरी स्त्री 28
17. दूसरा पुरुष 32
18. आखिर कब तक-1 35
19. अभेद्य-बन्ध 37
20. बिंधा चाँद 38
21. वेदना का दर्द 40
22. आभार 42
23. द्रौपदी-एक मानस प्रक्रिया 44
24. अंगूर की बेल 48
25. सत्ता का मर्म 50
26. क्षणिकाएँ 52

27. अपेक्षाएँ 55
28. मजबूरी 60
29. "प्लान्ड सिटी" 61
30. जन्म-दिवस देश का 66
31. पाँडु-पुरुष 70
32. मैं कवि नहीं हूँ 73
33. तुम हो ययाति 75

तृतीय भाग : व्योम

34. पहाड़ का यौवन 81
35. व्यापकता पहाड़ की 83
36. भ्रमित 85
37. मेघमय मन 86
38. तुम कौन थीं? 87
39. नैनीताल की झील पर चाँदनी 88
40. आयाम अपने-अपने 90
42. फैली चाँदनी 92
43. "गौला नहर का संगीत" 93
44. रमणी व्यथा 95
45. ओ, कौसानी 100

चतुर्थ भाग : नीड़

46. ढलता सूरज 105
47. वो पल हों कितने मधुर-मधुर 106
48. आज दिल में कोई तो लहर होती 108
49. तहज़ीब है कहाँ 109
50. तुम जहाँ भी गए 110
51. बेटी के जन्म-दिवस पर 111
52. प्रभु से मैंने कहा 112
53. एक दबा-सा गीत 114
54. सेतु-कितने सेतु! 116
55. कैसे मानूँ 119

समर्पित

तुम्हें–
जिसने–
मेरे जीवन की यामिनी में
शुभ्र – ज्योत्सना
का वितान तना –
जीवन की
कुण्ठित कटुता में
शालीनता का
पुट दिया–
जीवन के वीरान
उद्यान को,
सुरभित कलिकाओं से
भर दिया –!!

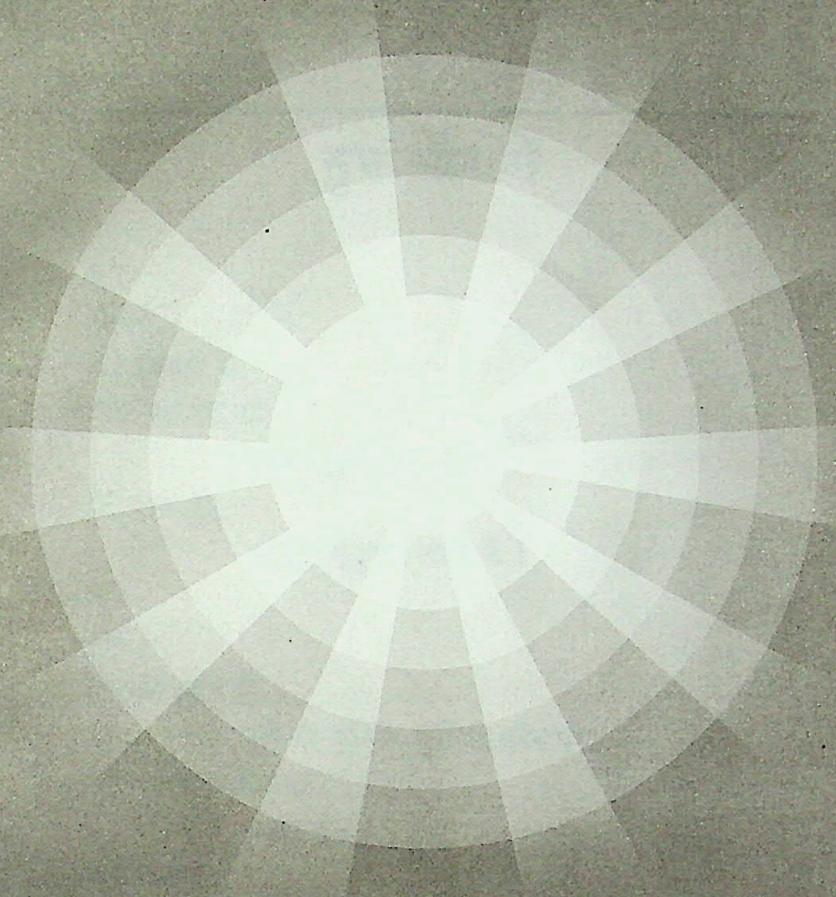

खण्ड एक

वातायन

तुम और मैं

तुमः
मुझमें,
मेरे चिंतन में,
मेरी कल्पना की
सूनी सूनी तार में !
मेरे मन की
मृदुल मृदुल झंकार में !
मैं !
तुम में,
तुम्हारे हृदय के
किसी धूमिल धूमिल छोर पर,
परित्यक्त पाहन सा
पड़ा हूँ–
अनास्थावान् !
आस्थाएँ जिसकी
पुनः जीवित हो उठेंगी
आपका–
मृदु स्पर्श पाकर !!

□□□

तरंग

तुम !
तुम्हारे बिना
यह जीवन–
इस जीवन की
हर उमंग–
हर मृदु तरंग,
मन में उठती
फिर दह जाती है।
तुम !
तुम्हारे बिना
मेरी कल्पना–
वेदना के
स्निग्ध, सजीले
स्थलों में;
भटक कर
रह जाती है। –
बस !
दो अश्रुकणों में
बह जाती है !!

□□□

आँसू

मेरे हृदय की
वेदना के
स्त्रावित जल–
मेरे अवसाद भरे
उच्छवासों के
शीतल कण–!

x x x x

प्राण !
मेरे अधरों की
भीनी सी
स्निग्ध मुस्कान–
विषाद रेखाएँ बनकर
ढल गई ;
उदासीनता में
बदल गई !!

□□□

परिभाषा

और हम –
यह सोचते हैं –
महसूस भी करते हैं –
कि –
यह जो ज़िन्दगी है –
सिकता कणों सी सूखी नहीं है !
यह जो प्यार है –
बालू कणों सा रीता नहीं है !
पर, सूखा, रीता होना ही
तो काफ़ी नहीं है !
नदी – जो रीति है –
फिर भी वह खड़ी तो नहीं है !
वह बहती है –
उसमें जल का आभास तो है !
पर यह प्यार – –गर – –
नहीं हैं
तो ! नदी बहती ही नहीं है
– वह सूखी है, रीति है !!
और गर, प्यार है –
तो –
इस नदी की उद्दाम गति है –
पूरी भरी है –
उछली चली है !!

□□□

दर्द की बयार

रे ! क्या कहा –
"दर्द है" !
दर्द ही तो ब्रह्म है !
वह चिर सत्य है,
चिर नवीन !
हर निष्पति, निष्कासन में
दर्द है !
हर उत्पत्ति, उत्पादन में
दर्द है !
और
यह दर्द –
बस बढ़ता है – –तो– –
किसी विकराल अन्धड़ की
परिणति लिए– !!
जब थमता है – तब ..
किसी मन्द बयार की
आलोड़न लिए !!

□□□

दर्द और सत्य

जितना भी है ,
जो भी है ..
सत्य है, सुन्दर है !!
सत्य में होता है–
दर्द !
सत्य तहों को बेंधकर
प्रस्फुटित होता है –
और हर
प्रस्फुटन है दर्द .. !!
अंकुरण है , दर्द !!
और दर्द भी
तो सत्य है
क्योंकि दर्द ,
सत्य से ..
बड़ा होता है !!

□□□

नव वर्ष

राख –
पिछले साल की
जो बन गई है !
उसमें
हमारी आस्थाएँ
बिखरी पड़ी हैं !
पर –
वे राख हुई नहीं हैं ..
(हो सकती भी नहीं)
क्यों कि
वे कुन्दन हैं –
आँच में तपी हैं –
निखरी हैं :
शेष – –
पिछले वर्ष का
जो बच गया है –
क्या है ? ...
वह है ..
हमारा स्नेह,
हमारा विश्वास,
हमारी आस्थाएँ ....
जो हैं चिरन्तन ...
इस अनास्था के

युग में भी
निष्कम्प रही हैं !!
राख के – –
इस हृदय में –
एक चिन्गारी निहित है–
जो नव वर्ष को जन्म देगी!
नव वर्ष के
नव दिवस पर
उपहार भेजें . . .
ऐसा हमें वाँछित नहीं है।
कौन–
किसके वास्ते–
किसलिए . . .
जब . . . अस्तित्व हमारा
एक ही है
तो क्यों बहें
औपचारिकता की लहर में !
तुम्हें–
क्या भेजें नवीन–
असम्पृक्त. . .?
तन, मन,
चिन्तन, मनन,
और यह जीवन
सब है. . . तुम्हें प्रेषित !
हमारी आस्थाएँ
स्नेह में. . . स्नेहिल–

पुष्टतर होती चलें
यही है . . .
सुमंगल कामना
नव वर्ष के लिए !!

□□□

छाया का आलोक

कुछ –
बढ़ती हुई
छायाओं का आलोक ..
जो
आज मुझे ढँप रहा है !
इन्हीं
छायाओं में
आस्थाएँ मेरी
मुखरित हुई हैं ..
पर ..
आस्थाएँ वे ..
विश्रृंखल होकर भी
उभरी हैं , पनपी हैं !!
वे आस्थाएँ
आलोक के किसी
पुँज को
अपने में समेटे हुए हैं –।
उसी आलोक से
मैं ..
बढ़ रहा हूँ
जीवन की ओर –
यह आलोक ही
अब छायाएँ हैं
उस तक की

जिसने घेरा था मुझे–
अनेकों बार..
लगातार !!

□□□

मेरा 'मैं'

कुछ यादों के किनारे–
रो देता हूँ मैं !
आँसुओं की अजस्त्र धारा –
यादों को – – भी
किए देती है खारा – ।
और मैं
फिर सोचता हूँ –
क्या यादें मेरे लिए हैं – ?
या
मैं यादों के लिए हूँ –:
जीवन –
मैं –
दोनों भिन्न हैं ..
मेरा 'मैं'
जीवन से विमुख है ।
तो ..
फिर मैं ही हुआ यादों के लिए ..
यादें–
मेरे लिए नहीं ..
क्योंकि
'मैं' जीना चाहता ही नहीं !!

□□□

अंधकार की आस्थाएँ

मेरे –
चारों ओर ..
अन्धकार की पर्तें ..
जो शायद
मुझे –
मेरे अन्त की ओर –
कर रही हैं मुखरित –
बढ़ती जा रही हैं –।
जिन –
घिरती , फिरती परतों में ..
एक पर्त
स्याह है , श्यामल है –
जिससे , मेरे प्राण ..
प्रतिपल –
ढक रहे हैं ..
उस पर्त के साथ
बढ़ भी रहे हैं –
पर – – मेरा प्रेम –
सदा से अमर –
और
मेरी साध –
सदा से मुखर –!
अपनी साध के वास्ते–
जाने –

कितने जीवन –
मिट चुके हैं
कितने बाकी हैं
पर
मेरा विश्वास,
मेरी आस्थाएँ –
    ध्रुव हैं –
    अटल हैं –!!

□□□

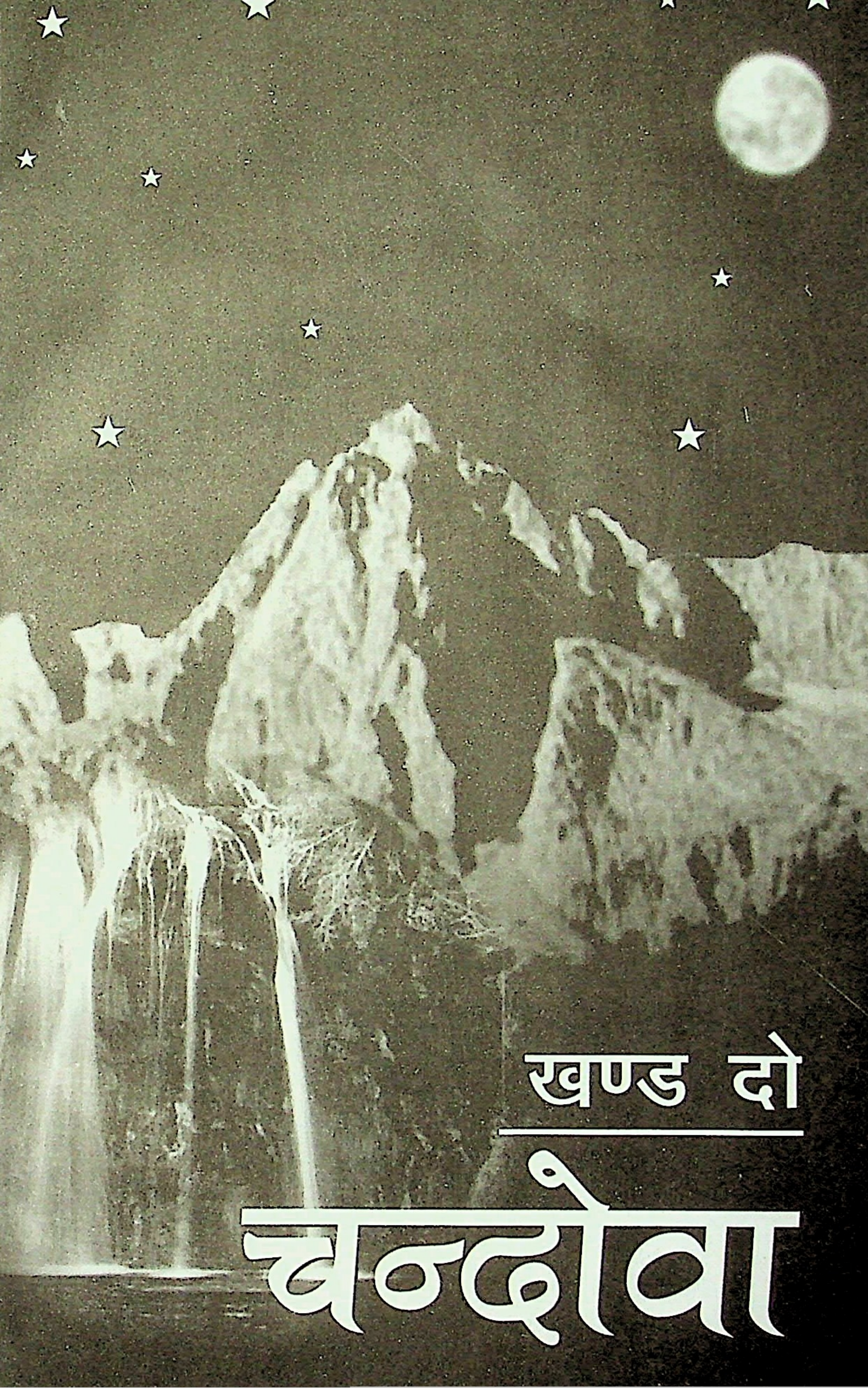

खण्ड दो

चन्दोवा

बँधे हाथ

ये
बँधे हुए हाथ–
रोज़ बँधते हैं–
तुम्हारे सामने–
किसी
श्रद्धा से,
निष्ठा से–
कि
स्वीकार्य हैं
ये सजदे – !
या
मेरी बन्दगी–
किसलय
बदलती जा रही है–।
ऐसा तो नहीं
उसमें है पुट–
किसी प्रत्याशा का–
मेरी कामना का–
या कहो
छद्म है –
तुमसे कुछ
माँगने का –?

□□□

कर्म

श्रद्धेय !
अर्पित तुम्हें ये-
अंजलि भर
श्रद्धा सुमन-।
कर्म करना
कर्तव्य मेरा –।
फल, आशा,
निपट, अज्ञान –।
पर –
आशा से जुड़ा
सब जीवन क्रम –।
प्रत्यक्ष है ,
सतत् कर्म –
परोक्ष कर्म
लगता विषम –।
अपरोक्ष मेरे देव –
कैसा कर्म –?
कैसे जीएँ
बिन जाने-
ये मर्म –
आशा– प्रत्याशा का
झंझा – क्रम !!

□□□

अवयक्त भाव

वो उगता हुआ
सुबह का सूरज –
आमों की ओट से –
नव वधू का
हल्का सा नारंगी
घूँघट लिए–
कुछ सकुचाती,
कुछ शर्माती सी,
चिबुक लालिमा,
दर्शाती सी, ..
अनिर्वचनीय छवि !
तुमने भी तो देखे होंगें
कभी–
वो हरे फैले ख़ेत–
ओस ढकी दूब–
बिखरे मोती–
ईख़ के खेत–
आदम– हुजूम से
इकट्ठे खड़े –।
वो एक ग्रामीणा
इठलाती–
कसमसाती–
लचकाती–
अपनी कटि–

नवेली नार–
अपने कृषक के लिए
ले जाती
सुबह का भत्ता–
प्रेम से ओत – प्रोत–
वो सब तुमने
देखे होंगे –!
वो वीराने ख़ेत–
उगी नुकीली घास
फैली रेत–
किसी बाँझ– सी
कुलबुलाती कोख–।
वो समस्त फैलाव–
कितने भाव–
समाविष्ट किए रहता
अपने भीतर
अन्तस् में–
कितने उपजते–
अव्यक्त सत्य–
पावन, अकलुष;
और
कितने सहेजे रहते हैं
व्यक्त तथ्य–
कितने अनर्गल , कटु, कलुष–
पर
चलती है जीवन तरी,

उन
अव्यक्त सत्यों के सम्बल पर
अनवरत–!
उसी सत्य की
अभिव्यक्ति भर के लिए–
क्योंकि
शब्दों से कोमल
होते हैं स्वर–
और
स्वर से भी कोमल
होती हैं
भावनाएँ– !!

□□□

किसका सत्य

मैं जानता हूँ–
यह है मेरा तथ्य–
पर शायद–
पहले भी किसी ने
कहा हो –
गहा हो –
सहा हो –
महसूस किया हो –।
पर
मेरे भीतर
भीतरतम तक
सुलगती ज्वाल –
किसी छटपटाहट के साथ–
दहकती है –
दमकती है –
और मेरी आँखों के सामने
तिरते हैं
वो –
स्निग्ध सुनहले पल।
एक झनक जिनकी
मुझे –
जीवंत किए है
अनन्त –;
और मैं
उन्हीं पलों के किनारे –

उसी छवि को
अनवरत
सहेजता हूँ –
अव्रिरल !!

□□□

भाव सरसिज

कभी कभी
चाह कर भी हम
नहीं बता पाते –
कि हम चाहते क्या हैं?
या
कह नहीं पाते, अपना मनतव्य –!
कितनी विकट
परिस्थितियाँ–
परेशानियाँ–
तूफानों के अम्बार –
झेलते हैं
अपने हृदय पर –!
और –
तुम्हें – उससे दूर
महफूज़ –!
समेटे रहते हैं
तुम्हारी दोशीज़गी को
अपने नयनों की
परिधि में !
प्रेम –
व्यक्त – अव्यक्त –
दोनो भावों में
प्रेम है –

तुम्हारी स्मिति की
पहली किरण
और सरसिज
खिले मन का –
वरन्
सिमटा, सकुचाया
अपने अवसाद की
पीड़ा को समेटे
सरसिज रहे –
ढँपा –
निशा की कलिमा
की गर्त में –
अरूणाभा तक –
अविरल !!

□□□

दूसरी स्त्री

चेतना में जीते हैं
हम –
एक ज़िन्दगी –
यथार्थ के आयाम में –
और
एक ज़िन्दगी है पनपती –
अनवरत –
अर्ध चेतन
मानस – पटल पर –!
कितने ही बिम्ब
हैं उभरते –
आठों याम –
मन के वातायन पर –
सतरंगी अम्बार में –
और
छिटक जाते हैं
प्रसृत
अनगढ़ित विचार से –।
तुम –!
हो मेरी सहचरी –
सहवासिनी
सहभोगिनी–
अनुगामिनी–
पर

वो दूसरी स्त्री –
जो निरन्तर
झलकती है –
झाँकती है –
मेरी परिकल्पना में –
तममय निशा में –
निशीथ सी –!
जो अपने
रूप माधुर्य से
आसक्त करती मुझे –!
एक अम्लान
सी मुस्कान
पी जाती है
मेरे जीवन में घुलित
कल्मषता,
कटुता,
कलुषता
के वो सारे जाम –!
और
मेरे नयन
ढूँढते हैं –
विचरते हैं –
हारिल से
व्योम की गहराइयों में –
उस रूप लावण्य की
असीम मादकता –

कि प्यास का
अतृप्त पोखर
बने रहते
मेरे दृग
उन्मत्त , उन्मत्त !
मेरी प्रेरणा की –
स्त्रोत
भरती है मुझमें –
नव स्फूर्ति,
नव उमंग,
नव जीवन तरंग,
कि
क्लान्त मेरा मन,
विश्रान्त तन,
चहक जाता
उसके
आभामय तेज से –
पलाश के
सान्निध्य से !
खोजता हूँ ,
वो सभी,
ओ मेरी सहचरी –
तुममें
अपनी कल्पना के
अनुरूप
उसकी भंगिमाएँ

लासानी अदाएँ
हर स्मिति मे झलकती
पूर्णिमाएँ–
पल पल प्रसरित मदिराएँ–
प्राणोत्तेजक
प्रेयसि के दृगों से प्रवाहित
रूप की
स्निग्ध शिराएँ !!

□□□

दूसरा पुरूष

नहीं कहती मैं–
तुम नहीं चाहते
हो मुझे –
ऐसा भी नहीं
कि
तुम नहीं हो
समर्पित –
तन मन आस्था से –
प्रेम की
पराकाष्ठा से –!
मानती हूँ –
मैं बसी हूँ
तुम्हारे
कल्पना संसार में –
यथार्थ के
समस्त पारावार में –!
परन्तु
वो दूसरा पुरूष –
उसे तुम जानकर भी
अनजान रहते हो बने –
उसे कितना ध्यान
रहता अपनी सहचरी का–
बिस्तर पर भी पड़े पड़े –
उसे रहती उत्कटता
सभी सुख–

साधन जुटाने की–
कितना उद्दम
कितनी कर्मण्यता
तत्परता
उसमें –
व्यस्तता में भी
व्यस्त रहने की
कितना पुरूषार्थ है उसमें –
समर्पित करने को
हँसता, पनपता, उफनता
सुख सागर –!
आफिस से आकर भी
वो सदा रहता
अदम्य चलाएमान–
व्यस्त,
बच्चों में, ख़ेल में
या हो फिर पाकशाला में –
और
सहचरी की हर पीड़ा से
पीड़ित , संलिप्त–
संवेदना से लिप्त–!!
वो उप्–पुरूष
करता भ्रमित
मेरे अर्धचेतन मन को
मेरी अभिव्यक्ति के हर चरण को–

प्रगल्भ प्रलाप में–
या प्रेम के हास में, परिहास में –।
तभी तो
महसूसती हूँ
कितनी अकुलाहट
विक्षप्त झुँझलाहट –
कलान्त मन की , तन की
थकावट –!
सुख का मर्म –
उसका आदान–प्रदान –
दूसरे की पीड़ा में
आहत हों –
अपने प्राण – !!

□□□

आखिर कब तक –!

कुछ कहो –
यूँ चुप ना रहो –
कहने से दुख बंट जायेगा –
शायद यह गहराता बादल,
मन के वातायन से –
छट जाएगा –!
हम – तुम –
फिर होंगे –
समाविष्ट –
किन्हीं सपनों में
लील जायेंगे –!
सपने खिलेंगे –
फिर उगेंगे
उमगेंगें –!
अनपहचाने उन सपनों में
तुम ढूँढोगे
मेरा मन, अपना मन !
अपनापन !!
वो रूप नया
सुखमय सागर –
वो सौरभमय नभ –
उसमें उगा –
प्रदीप्त तारा –
मेरा तुम्हारा –

शुक्र सा चमकेगा –
उल्का सा दमकेगा –!
और
हम होंगे
निर्लिप्त –
निस्पृह–
आत्म समर्पित –
आत्म सात् –!
वो दुःख –
वो सपने –
उनका समावेश –
आज जीएँ हम
या सहें –
सहते रहें –
बस रहें –
अनकहे –
आखिर – कब तक !!

□□□

अभेद्य – बन्ध

बहुत से
वो रोग
जिन्हें भोगते हैं
हम –
सुबह शाम –
आठों याम –
हमारी नियति नहीं होते –।
वो होते हैं
हमारा
आन्तरिक द्वन्द्व –
पाप और पुण्य का
अभेद्य बन्ध !!

□□□

बिंधा चाँद

वो बिंधा हुआ
चाँद –
और, छिटकी चाँदनी –
किसी
अनर्गल तथ्य सी ,
भीतर ही भीतर ,
आज तक
पैठी रही ॥
मैंनें –
पिरोए थे हज़ार सपने
पूनों के चाँद के गिर्द –
और
चाँद ही बिंध जाएगा ?
सपने
तुम
और चाँदनी –
आज भी हैं –
पर
एक हूक
अनाहूत –
एक टीस
सटीक –
अन्तर्तम तक

है कसमसाती –
          सालती –
किस लिए ?

□□□

वेदना का दर्द

कह दूँ ?
कैसे कहूँ ?
वो वेदना का दर्द !
फैली , खुली
काली सड़क –
आज आँखों के सामने से
गायब –
ना बचा उसका कोई
नामोनिशां –।
वो कि जिसके वक्ष पर
लिखे थे
कितने इतिहास –।
और
आज यह परिताप –
कैसे कहूँ – कैसे सहूँ !
इतिहास का परिवेश
कितना विस्तीर्ण –
कितना प्रसृत –
और उसमें भरी पूरी
एक ज़िन्दगी
गायब –
न उमंग , न जीवन तरंग –
न हिल्लोर
न आत्म – विभोर –

न उमड़न
न घुमड़न
न स्वायत्त समर्पण –।
सब कुछ
धुल गया
अवशेष सा –
शून्य के
अपरिमित घेराव में –।
तो, कैसे कहूँ
कैसे सहूँ
वो वेदना का दर्द
वो पनप कर
मिटने का मर्म !!

□□□

आभार

स्निग्ध, सजीली
याद सी
उभरती है – मानस पटल पर
बार बार –!
आम्र की फूटी वो
पहली बौर –
और
कोई अकेली भटकती
मनचली – सी
एक पगडण्डी
रूकी इस ठौर–।
मन्द मन्द बहती
मृदुल बयार –
और
धरती – रही तपती
सूर्य की
प्रचण्डता में –
फिर
बरसी चौमासे की
प्रथम सुखद फुहार !
किसका संग ले
ढल गई
निगोड़ी शाम –
क्षितिज पर आँख गड़ाए

प्रियतम की प्यास –
और, नीलाभ रंग गया
कालिमा के
आवरण में –
कि
उगा एकाकी तारा
प्रभामय
और
चन्दोवा भरा –
आलोकमय
तारों के प्रकाश में।
मैं अकेला –
अश्रुमय , अवसाद मय
था घूमता
किसी उन्मत , उन्माद में –।
तुम्हारी पलक की
पहली किरण
हर गई समस्त अवसाद।
हृदय पलावित हुआ
किसी अनभिज्ञ आवेश से –
यही था, शायद
प्रथम प्रेम का प्रस्फुटन –
जिस के लिए
समर्पित आज –
मेरे अन्तर्मन का समस्त
आभार !!

□□□

द्रौपदी – एक मानस प्रक्रिया

तृष कुटिया के द्वार से
अर्जुन पुकारे –
“ माँ देखो –
हम क्या लाए हैं
तुम्हारे लिए ?”
कुन्ती अन्दर से बोली–
(शायद जानती ही हो!)
(बच्चों की हर क्रिया
पहचानती ही हो!)
“बेटा, पाँचो भाई
आपस में बाँट लो !”
इस एक कथन ने
दिया नया मोड़ –
जीवन गति को –
द्रौपदी के –!
सोचा मन में द्रौपदी ने ,
“कैसी है यह मेरी सास–
समझा मुझे कोई मूक गायं–
बाँध दी जिस भी खूँटे पर चाहे–
या निपट अनजानापन
या है कोई छलावा !
मेरी पति परायणता को ललकार–!
मैं ब्याहता हूँ धनन्जय तेरी

तेरे बल, साहस, शौर्य, गौरव-
की स्वंयवरा -!
तेरी रहूँगी सहभागिनी -
मुझसे न चलेगा
पाश्विकता का खुला नाच -
मुझसे ना नचेगा - !!
गाँडीवधारी तुम ही बोलो -
किस ठौर मेरा मार्ग बनेगा !
ऐसा तो नहीं कि
सास मेरी -
अपने चरित्र की किसी परिणति में -
अहम् मेरा, अस्मिता मेरी
कर रही विखण्डित -
और
मैं बँधी मर्यादा वृत में -
रहूँ सदा चाकरी सी
नत - मस्तक कीए -
खुद के लिए, जग के लिए !
मातृभक्त जो ठहरे अर्जुन -
मातृ वचन था उनके लिए
अटल -
शिरोधार्य -!
और था भी कोई विकल्प
ना अर्जुन के लिए -
धनुर्धर गाण्डीवधारी ने
दिया आदेश -

“द्रोपदी के लिए , माँ आदेश
सर्वोपरि !
सर्व मान्य !”
वाह री ! कैसा रहा उपहास
यह भी –
बाकी भाई – चारों पाण्डव,
मान–मर्यादा त्याग –
सब धर्मों का विवेचन
ताक पर धर –
युधिष्ठर –
वीर भीमकाय भीम –
अपनी पौरूषता नकार –
सब मान्य करते रहे
एक अनजान
उक्ति का –!
चाहे हो वो
अनुज–
नकुल–
या सहदेव !
यह उक्ति थी अनजान
इसे किसने जाना –?
इतिहास – या फिर
यों कहो – संस्कृति
तो है साक्षी –
कुन्ती ने अपने कौमार्य की
प्रच्छन्न गाथा

छुपाने के लिए –
द्रौपदी के स्त्रीत्व को
किया लज्जित –
पाँचों पाण्डवों की
बना गम्या – !
यही है सदा से चलती
आ रही –
स्त्री की डाह –
ईर्ष्या –
नीचा दिखाने की प्रक्रिया !!

* * *

अंगूर की बेल

न जाने
कब तक
निहारा मैने –
तुम्हारी कृश , तनु
देह को –
सिमटे सिमटे !
अपने ही
अस्थि – अवशेष
के सायों में
ढलते ढलते –!
शारदीया वृष्टि की
ठिठुरन में
जलते जलते –!
कितनी वेदना
संजोए
उर में –
चिर प्रतीक्षित –
मधुमास की सहचरी
तुम
वल्लरी –
प्रस्फुटित हुई –
नव जीवन
हिल्लोर से
भरी – फूली –

प्रियतम के पर्दापण पर
फैली – लिपटी
बहकी – बहकी !!

□□□

सत्ता का मर्म

मेरी –
नन्हीं –सी बेटी –
आती जाती –
छन–छन –छन–छन
गुन–गुन करती–
बतियाती–!
कभी दुलार में –
या फिर
उखड़ी मानस
स्थिति में –
झिड़क –
झिंझोड़ा खाती – !
प्रताड़ित –
क्षत–विक्षत् –
यों कहती – समझाती –
"आप राजा तो नहीं
यहाँ के ?
आप कृष्ण या कोई
भगवान तो नहीं
यहाँ पर–
तो
क्यों कर हो डाँटते ?"
मैं समझा –
यही है

सार्वभौम सृष्टि की
गति का मर्म
और
है यही शायद –
राजनीति की
सत्ता का मर्म !!

◻◻◻

क्षणिकाएँ

(1)

सूर्य
सर पर रहा –
चमका–
ऊष्मा का पुँज –
झुलसाता –
प्रचण्ड !
गगरी –
जल से भरी –
उछली –।
ढँपा वो –!
शान्त –
धीर –
समीर –
अस्ताचल – सा लीन !!

(2)

यौवन ने
कितना भी चाहा
आगे–
देख नहीं पाया !
बुढ़ापा –

बूढ़ा हुआ
ललचाया -
पीछे -
मुड़ नहीं पाया !!

(3)

एक
हल्की सी लीक
बीचों बीच ,
इस ओर छांव
उस ओर
धूप !!

(4)

धूप
रूपहली
चमचमाती
चारों तरफ फ़ैली –।
छाँव
कितनी पास
दुबकी
सकुचाई
सिमटी रही ओढ़नी में
उदास !!

(5)

पुरूष ने
महिला को देखा
और कहा –
“मैं हिला !”
महिला में नारी
जागी
और बोली –
“ना , री !”

□□□

अपेक्षाएँ

कितनी
रहती हैं अपेक्षाएँ
हमें –
एक दूसरे से !
तुम
मेरे सामने खड़ी,
रहकर भी
नहीं बोल पाती,
नहीं देख पाती ,
युगलदृग
रहते हैं झुके –
पर
अपेक्षा रहती है
मेरी –
रहती है तलब,
बस
एक नज़र के वास्ते !
क्या होगी
तुम्हारी प्रत्याशा
या
तुम्हारी सहज,
सौकुमार्य,
शालीनता–
ही बनी भीति –

कैसे समझ पाए कोई !
अविच्छेद बन्धन युक्त
जाते हैं चले बन्धते -
और
रहती है अपेक्षा
अग्रजों, वरिष्ठों, बुजुर्गों की
कुछ व्यक्त
कुछ अव्यक्त-
हम उतरते नहीं पूरे
उनके अनुरूप-
किन्हीं परिस्थितियों
के वश !
हमारी भी तो
रहती है अपेक्षा-
कि वो उन्हें समझें
उनका सही
करें आँकलन -
महसूस करें !
चाहता हूँ मैं -
मेरी बेबी -
सुबह उठे
मुस्कुराती-
कली सी
चहचहाती
और लग जाए गले
बयार की हिल्लोर सी।
पर

रहती है
उसकी भी तो
कोई अपेक्षा–
कि मैं उठूँ,
आगे बढ़ूँ
अंक में भरूँ –
और चूमूँ –
आलोड़ित करूँ
दुलार दूँ –!
दफ़्तर में
चाहता है
मेरा बॉस –
विनम्रता ,
शालीनता,
और
आज्ञाकारिता –
पर
मेरी भी तो
रहती है
कोई अपेक्षा –
उसने, किसने समझा
सहेजा –
और उबारा –।
कि
मुझे एक निरन्तर
दबाव के घेराव
में बाँध

अपने अनुरूप
क्यों
किसी बिम्ब में
जाए उतारा–!
आज का तथाकथित
परिभाषित मजदूर'
कितनी रखता है
अपेक्षाएँ '
अपने मालिक से –
कितने लगाता है नारे –
करता है आवाज़ बुलन्द
कितना नगाड़ा
पीटता है –
पर
समस्याएँ मालिक की
सामयिक परिवेश,
व्यवसायिक आवृत
राजनीतिक उथल–पुथल,
कौन समझता है इन्हें –
कौन सुनता है
मालिक की दुहाई–
या कहो यों–
देश की पुकार–
कर्तव्य निष्ठ होने के लिए
उत्पाद बढ़ाने के वास्ते !
कौन जाने देश की

क्या है अपेक्षा
हम सब से ’
या फिर
क्या हमं ही रख
सकते हैं
सारी अपेक्षाएँ
अपने देश से –?
क्या
कोई कर्तव्य हमारे
भी हैं –
देश के अनुरूप –
कर्म – निष्ठ,
समर्पित,
ईमानदार
सेवा भाव –
श्रद्धा और प्रेम से
ओत – प्रोत –
देश – समर्पित
होने की भावना
से युक्त !!

□□□

मजबूरी

अहम्
से भी बड़ा
होता है
एक मर्म –
और
मर्म
में निहित होता है
एक दर्द –
और
दर्द से भी
बड़ी होती है –
मजबूरी !!

□□□

"प्लान्ड सिटी"

तुम भी तो –
ऐसा ही महसूस
करते हो ना ?
इस शहर के दिल में
छुपा हैं
किसी अन्तर्वेदना
का मर्म !
इसका मुखौटा ,
सुन्दर है –
सजा है –
अलंकृत है –
पाटलों के उद्यानों से –
मखमली फ़ैली घास के लॉनो से –।
पर फिर भी
न जाने क्यों ?
एक वीरानगी,
एक भयावह सूनापन
किए है ग्रसित –
उस सूने, समतल, सपाट
मैदान सा
जिसमें कोई जीवन नहीं
जीवन की हिल्लोर नहीं
उमंग नहीं –
उमंग की तरंग नहीं –।

शहर, कितना सजा है
देदीप्यमान है
कितनी चौड़ी सड़कें –
ना मिट्टी, ना खड्डे –
नियोन लाइट से जगमगाते मार्ग
और चौराहे ,
हैलोजन की अरूणाई में लिपटे हुए –
फिर भी –
किसी खूबसूरत महिला सा उदास
जीवन की ऊब में डूबी –
तलाक की राह में अग्रसर –
वो सारी
सौम्यता, सुन्दरता की
अनुपम छटा –
बिखरने के बाद भी –
वीरान है –
शाम छः बजे बाद –
मुर्दानगी है –
मकतल है –
सड़के हैं –
लाइटें हैं –
पर चलने वाले कहाँ हैं ?
कभी तुम सोचते भी होंगे –
यह शहर है पक्षियों का –
जो सुबह कलरव से भरता है –
जाग जाता है – पाँच बजे –

और तैयार हो –
बच्चों को सहलाकर
खाना पकाकर
चल देता है
निजी दिनचर्या में –
रोज़ी कमाने –
दफ़्तरों में , ऑफ़िसों में
फैक्ट्री की चारदीवारियों में
और लौट आते
शाम को –
नीड़ों में –
उन उड़ते पक्षियों की
पंक्तियों से –
जो करती हैं सड़क पर
चुहल – पाँच और छः
के बीच –!
कितनी कारें, स्कूटर
बसें, साइकल –
और पैदल महिलाएँ –
किशोर, युवा, युवतियां –
सब तरह के रंग,
पैरहन,
रूप, फैशन, यौवन सलोने
सरकते हैं –
उन्हीं काली सड़कों पर –
और फिर –

छा जाती हैं –
एक निर्मम उदासी
किसी बांझ के से ललाट की !
शहर के कितने अंग
कितने सेक्टर ,
सबमें हिल जुल –
सब हैं अपने अपने अस्तित्व
में मगरूर –
और टिमटिमाते हैं
उनके तिमंजले फ्लैट्स –
एक रसता में पिरोए –
मुखर करते
एक अजब सी नीरसता –
अलगाव की विराटता –
और फिर
शहर सो जाता है –
सोती है उसकी हर इमारत
शाम पाँच बजे बाद –
सिमट जाती है सारी
नीरवता , सन्नाटा
सारी ज़िन्दगी की क्रमिकता –
और सोती है
नींद की बाहों में
शाम आठ बजे बाद –!
यही है शायद
वो प्लाण्ड सिटी

जिसे ली कार्ब्यूज़र ने
किसी एक रसता में पिरोया –
अलंकृत किया,
सहेजा, सजाया, संवारा –
पर यह ढल गया
किसी कल की नीरसता में
जो जीवन्त नहीं –
सुखद नहीं –
विषाद के किसी
निहित दर्द की
टीस को समेटे है
हृदय में !!

□□□

जन्म–दिवस देश का

बत्तीसवां जन्म दिवस है
आज मेरे देश का ,
पर ना जाने क्यों – आज
वो उत्साह नहीं,
उमंग नहीं ,
उल्लास नहीं,
यह ना तो है बालपन ,
ना ही बुढ़ापा ,
यह तो है पुरज़ोर जवानी ,
जब धमनियों में
प्रवहित होता है
गर्म फौलाद,
जूझने का संकल्प ,
अग्रसर होने का निश्चय,
पर्वतों से टकराने की क्षमता,।
इस उम्र में ,
इसमें तो इन्सां पार कर लें
सिन्धुओं को ,
उल्काओं को ,
नक्षत्रों की दूरियों को –
पर
इसे हुआ क्या है ?
ऐसा आभास होता है –
इसकी धमनियों में

कुण्ठा,
नकारात्मता
किंकर्तव्य विमूढ़ता
आलस्य
और अराजकता ही
बह रही है –।
कभी कभी तो
होता है महसूस –
कि हम अपनी –
संकीर्णताओं,
धर्मान्धताओं,
से ग्रसित ,
प्रांतवादों, प्रदेशवादों
से पीड़ित
सामंतवादी रूख लिए
अग्रसर हैं –
जहाँ भ्रष्टाचार ,
भाई – भतीजावाद ,
बेरोज़गारी ,
मुद्दा ही नहीं कोई –
और
देश को लीए जाते हैं
किसी पक्षाघात की ओर
धसीटते ,
धक्कमपेली से ठेलते –।
नारों का शोर गुल,

ना कुछ करने की होड़
धरने, काम बन्द ,
काम का पहिया जाम
अधिक से अधिकतर
पाने की मांग–
पाटती हैं खाईयाँ,
गहराइयाँ –
असमानताओं की –
विषमताओं की –।
पद – दलित,
नहीं उठ पाया आज भी –
जकड़ा है –
झंझावृत में
दो जून रोटी के जुगाड़ में –
पिस रहा है – राजनीतिक
सामाजिक पाट में –।
नहीं पहुँच पाया
उस तलक
स्वाधीनता का स्वाद –
क्या सरोकार उसे है
स्वतन्त्र हवा से –
वोट के अधिकार से –
कंकाल था नर
कंकाल है
और रहेगा – ।
मुक्ति चाहिए ,

जमाखोरों, मुनाफाखोरों
असामाजिक तत्वों से
जो देश द्रोही ही नहीं –
हैं आदमखोर भी –
पीते हैं भारत को चूस –
जीते हैं आज़ादी में
पीते हैं आज़ादी को
और फिर भी कहते हैं
इन्हें मिला क्या
शायद, आज़ादी !!
जानते नहीं ये 'शायद – वाले'
नोच नोच कर खाने वाले
चूस–चूस कर पीने वाले –
यदि देश को
पक्षाघात या कैन्सर
ग्रसित करेगा –
तो
इनका महल –
सबसे पहले ही ढहेगा !!

□□□

पाँडु – पुरुष

तुमसे, शायद –
कभी कहा भी न हो –।
पर
मेरे भीतर का
पुरुष –
संस्कृति से जुड़ा हुआ–
जिसका
रक्त ना भी हो
पर
संस्कृति का
वो अवयव , वो तत्व;
धमनियों में
प्रवहित हुआ
आया है चला –।
आज भी
तुम्हारी लावण्यमयता,
रूपशालीनता
सलोनापन,
सौन्दर्यता
का आसक्त हूँ
उतना ही –।
नहीं है यह
कोई पाश्चात्य प्रभाव, –

यह तो है संस्कृति
की देन –
धरोहर –।
अप्सराएँ ,
अभिसारिकाएँ –
नर्तकियाँ –
किसी रूप में भी
छायापटल पर
या मन वातायन पर
कहीं भी
किसी भी रूप में
आकृष्ट करती हैं
आज भी मुझे !
मैं –
भारत का पुरुष हूँ –
जो
तुम्हें स्वीकारता हूँ
अपनी परिभाषाओं में –
संस्कृति से जुड़े मूल्यों में –
क्योंकि –
मेरे भीतर का पाँडु –
कुन्ती को नहीं
माद्री को नहीं–
गाँधारी को स्वीकारता है –
जो मेरी
स्वच्छन्दता पर

उच्छृंखलता पर
जान कर भी
आँख मूँदे रहेगी –
मेरी अनुचरी
मेरी अनुगामिनी रहेगी
क्योंकि
मैं हूँ –
भारत का
सनातन पुरुष –
संस्कृति से
जुड़ा हुआ !!

□□□

मैं कवि नहीं हूँ

मैं –
कवि नहीं हूँ !
पर
फिर भी
उच्छिष्ट भाव
छूता नहीं हूँ ।
सौन्दर्य की
अनुभूति की
उधेड़– बुन
में ही जीता हूँ
हर
प्रेरणा के स्त्रोत
में ही
बह जाता हूँ !
दर्द की
टीस
हृदय में समेटे
डोलता हूँ –
जागता हूँ
सोता हूँ
दर्द झेलता नहीं
सहेजता हूँ –
मूक वाणी
से

शब्दों में
कहता हूँ
पर
लयबद्ध नहीं –
क्योंकि
दर्द –
लय जानता
ही नहीं !
मैं –
तभी तो
कवि नहीं हूँ !!

□□□

तुम हो ययाति

वो कितने आसमान –
कितने चन्दोवे ,
तारों भरे –
समेटे हैं तुमने
अपनी –
पुतलियों की परिधि में !
उन आसमानों
से परे भी
कुछ बसे हैं
संसार –
जिनसे शायद तुम्हें
ना भी हो कोई
सरोकार!
पर –
उनकी खोज में
तुम उड़े हो –
पवन से बहे हो –
कई मायावी
रूप धरे हो –
हर रात
जब तुम सोये हो
तो वो सब
जगमगाते
वातायन

मुखरित रहे हैं –
भीतर, तुम्हारे भीतर !
फिर भी
तुम वो ही हो ना –
जिसने समेटा है
उस जीर्ण देह का दर्द –
जो दिल
हाथ में ले –
सुबह से शाम तक
तोड़ती है उसे –
एक उपत्यका के वास्ते –
जिसे पैरों तले
रौंदें सभी –
टूक टूक हुए उसके
हृदय को निर्मम !!
क्या वो हृदय –
वो संवेदनशीलता
तुम्हारी नहीं थी–?
क्या तुम पिसे नहीं हो –
उस उपत्यका के
पथ पर –
और रोए हो पहरों–
उस जर्जर ,
निरावरण –
ठिठुरती देह के
आँचल में भर कर !

तुम्हीं तो
मरू की तपती
उष्णता मे
मृग के हृदय में
पैठकर,
मरीचिका की खोज में
भटके रहे –।
स्वाति के लिए
सदियों
सीप की कोख में
सिमटे रहे–।
किसी वृष्टि ,
अनावृष्टि के लिए–
पानी की बूँद बनकर
मेघों के दामन से
उलझते
कोसों दूर –
इस छोर से –
उस छोर तक –
बहते रहे –।
पल पल हुए हो जीर्ण
और
समाविष्ट हुए हो –
हिमाच्छादित श्रृंगों की
गोद में –
सृजन की कोई

नयी चाह लेकर –
समस्त सृष्टि का
दर्द टीस लेकर –
अनासक्त–!
पर रहे
फिर भी –
ययाति तुम –
हृदय से –
क्यों कि तुम
कवि हो –
चिर अन्वेषी हो –
दर्द, को समेटने की
चाह में
तुम जीवित रहे हो –
जीर्णता की
दहलीज़ से
लौट लौट
आए हो –
नव यौवन की
हिल्लोर लेकर –
क्योंकि
तुम ही
हो ययाति !!

□□□

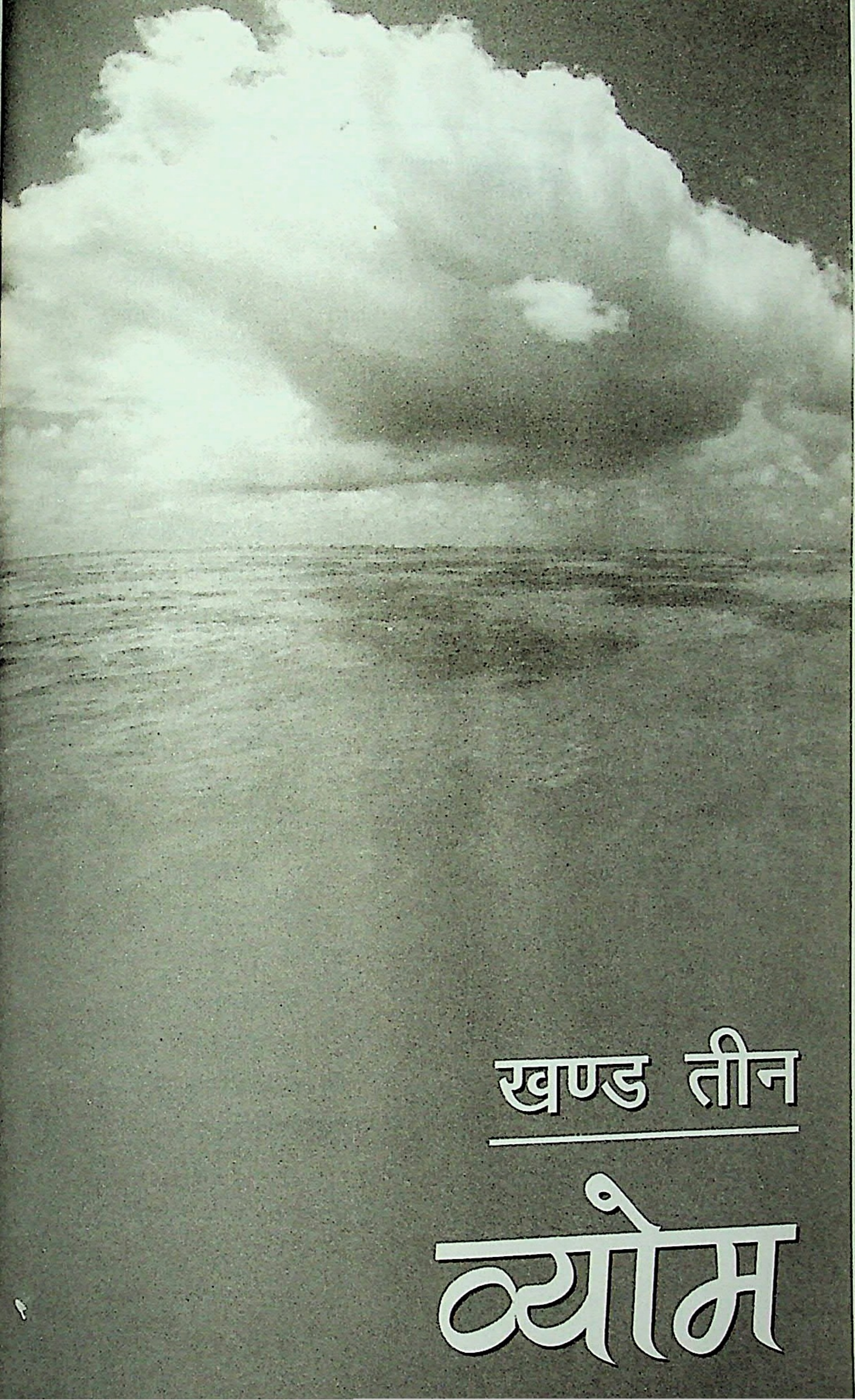

खण्ड तीन

व्योम

दीए भर
अवसाद ग्रसित,
अलगाव के क्षण –
दो टूक टुकड़ों के लिए
झुर्रियों में
झलकते क्षण !!
(कौसानी के पथ पर)

□□□

व्यापकता पहाड़ की

पहाड़ के सामने
हूँ मैं !
पहाड़ ही पीछे
है मेरे !
हरा , फैला ,
उन्मुख –
उजियारा,
बतियाता,
पहाड़ !
निशीथ की
हिल्लोर में
जगमगाता
उजियाला
पहाड़ !
बादलों के स्पर्श से
स्पन्दित
डोलता पहाड़ !
पहाड़ ही
मैं हूँ –
पहाड़ ही
तुम हो –
और – – – पहाड़ ही है –
वो – – असीम –

वरद – हस्त
फैलाए–
तेरे मेरे पीछे !!

(नैनीताल शिखिर पर)

□□□

भ्रमित

एक बदली
हल्की – सी ,
अठखेलती,
मचलती,
उठी ,
घुमड़ी,
लहराई –
गहराई ,
आच्छादन के अवसाद से
ग्रसित
भ्रमित
लुप्त हुई –
क्षणिक
भ्रम जगाकर !!

□□□

मेघमय मन

मेघों के
झुरमुटों में ,
झुटपुट जंगलों में ,
उलझता,
भटकता,
मन – वातायन –।
कभी निरभ्र ,
निर्मल,
निश्चल,
नि:स्पन्द ,
निहारता मन –
विचार हीन –
कल्पना विहीन –!
एक टूक
निहारता
पगलाया
बौराया मन – –
कैसे भटके
मेघों के – –
संग संग –!!

(हल्द्वानी में)

□□□

तुम कौन थीं ?

मैं नहीं जानता
तुम कौन थीं ?
पर
तुम्हें देख
जो मिला
आत्मतोष –
एक सहज – सी
स्वर लहरी
गुज़र गई
अन्तस् से
असीम की ओर !
तुम्हारे
रजत – धवल
रदनों की माला से
फूटे वो
स्फटिक निर्झर –
बार बार
निहार–
मैने पिरोए
अभिलाषाओं के हार !!

□□□

नैनीताल की झील पर चाँदनी

वो
ठहरा हुआ चाँद –!
पहाड़ के शिखर पर
पेडों के झुरमुट से
उलझा हुआ चाँद–!
“नैनी” को
सुप्त, तन्द्रिल
ताकता हुआ चाँद–!
रजत सीप सा ,
व्योम से उतारा,
हुआ चाँद–!
नग – शिख से
मुस्काता
निहारता
उस दूधिया देह के
प्रसार में प्रसरित
“नैनी” के आँचल में
लिपटा हुआ चाँद !
“नैनी” भी
अस्त – व्यस्त
अलमस्त
मदिरामयी सुप्त –
चाँद की दीवानगी में

कब तक रहे
प्रशान्त –
निभ्रान्त–!!

□□□

आयाम अपने – अपने

दो लीकों के बीच–
चलते–
बैलगाड़ी के , जीप के
बस के या कार के
पहिए–
हमें ठेलते हैं
दुपहिए–
या फिर
हमारे दो पाँव
लिए जाते हैं हमें –
किसी गन्तव्य की ओर
जो
हो भी सकता है,
ना भी हो ,
तुम्हारा या मेरा
गन्तव्य–!
पगडण्डी , रास्ते,
लिए जाते हैं सभी
किसी मंजिल की ओर
जो किसी का रहा होगा–
या बन गया होगा–
अभीष्ट –
उस पर –
रूकते हैं हम –

रूकते रहते हैं –
अनेकों बार –!
आयाम –
अपने अपने –
बनाने हैं हमें –
बनाते रहना है –
क्योंकि गन्तव्य होते हैं
अपने अपने – –
मेरा गन्तव्य तुम्हारा
हो – ना – हो –
मै रूक सकता नहीं –
मुझे
अनवरत चलते चलते –
जोड़ने हैं
आयामों में –
नये आयाम –
नये आसमान –
क्योंकि –
स्वंय हूँ मैं
अपना पड़ाव–
रूकने का –
चलने का –
या फिर
रूके रहने का !!

(रानी खेत से प्रेरित)

□□□

फैली चाँदनी

बाहर है –
फैली चाँदनी –!
झर – झर
बरसती चाँदनी –!
खन – खन
खनकती चाँदनी –!
खिल – खिल
के हँसती चाँदनी !
किस ठौर
भर ले अँजलि –
कैसे उलीचें चाँदनी !
यह स्निग्ध
मुखरित चाँदनी–!
कैसे उडेलें चाँदनी !
हिम की तपस पर
चाँदनी –!
हिय की जलन पर
चाँदनी –!
अवसाद हर ले
चाँदनी !
उजास कर दे
चाँदनी !!

(कौसानी की चाँदनी)

□□□

"गौला नहर का संगीत"

बिस्तर पर लेटते
वो सुखद
झरने की झर झर –
वर्षा के पगों की
पदचाप सी
वो गमक –
नहर में बहते नीर की
स्वप्निली सर सर –
सरक जाती प्राण में – – – अमर !
नहर का बहता नीर
ओ गौला –!
क्या है वो तेरा ?
वो उफनता –
हहराता
उद्याम, उद्यण्ड, उच्छृंखलता
पग फाँदता,
कूल काटता –
ओ गौला –
झोंपड़ी के आँगन में
पसरता
समस्त जीवन की पूँजी
समेटता –
बहता, फहराता –
अवरूद्ध, अविरल,

निर्बाध, निर्लज्ज –
बहाता, चपेटता
ओ गौला –
वो तेरा
अथाह जलाशय –
जो आज –
बहता है – – कर्णप्रिय
प्रिया की मधुरिम
पदचाप सा –
समेटे है
अपने सीने में
अनगिनत नयनों का नीर
प्रलाप, विलाप, विनाश –
पल पल अधीर –!
तुम बंधो –
बंधी रहो –
बाँधों में –
सिमटी रहो
जलाशयों में
ताकि सुनते रहे हम –
ठुमक बहता
नहर का संगीत !!
पुनः पुनः उभरता
मधुमासी अतीत !!

(गौला नदी हलद्वानी
के भाल का श्रृंगार)

□□□

रमणी व्यथा

कौन हो – तुम
रमणियों –
जाती किधर हो –?
किस ठौर – किसलय
किस डगर पर –
घास के गठ्ड़ उठाए –!
दरातियाँ कटि में दबाए –!
छनछनाती चूड़ियों की
छनक में –
झनझनाती पाजेबों की
झनक में –
दमदमाती बिंदियों की
दमक में –
पहाड़ के पग सी वक्रित
कटि में –
उत्तुंग सी उभरती
चोलियों में
फूटते यौवन मदकते
स्त्रोत में –
देख
कितनी बार – कितने ख्याल –
कौंध जाते – हृदय में –
असमर्थता के –
निस्पृहता से –

प्रेम के , अवसाद के – –
काश – – ! कान्हा की
मिली होती –
मायावी शक्ति –
हर लेते हर एक के
विषाद के क्षण – –
भर लेते – रिक्त जीवन
रेखाओं में
प्रेम विलय के रंग – –
न होती – – रमणियों पर
ये कुहास –
मर्द होते – – करें ये
जोखिम के काम !
दूर – –पहाड़ की
मेड़ पर
चर रही है घास– – –
वो गाय – भेड़ – बकरी
और पाँव रखे– – एक
ऊपर मेड़ पर –
लटकती सी–
दूसरा टिकाए – – –
नाली की कोर पर – –
अस्त – व्यस्त – –
चोटी, पल्लू, बाल
हज़ारों फुट नीचे
सरकती ढलान

फैली घाटी
ऊपर फैला वितान –
मुख धीर शान्त ,
अम्लान –
वो यौवना – – हो
काटती घास –
किस ओर निकल जाए –
कोई रीछ, सयार, बाघ
कौन जाने – – नयन में
कब से संजोए – – आस
पिय की – –
हिय में लिए –
कितनी युगान्तर प्यास –!
फिर भी – – गुनगुनाए
झींगुरों सा – सुरीला गीत – –
समाता चीड़ की पत्तियों में
नीरव – संगीत !
कैसे जाऊँ – थाम लूँ बढ़कर उसे
– – चाँद के आलोक में – !!
तुम – – तुम सबको – –
देखता हूँ –
चाय की दुकान पर –
दस – पाँच के झुण्ड में –
या फिर – – तापते धूप –
किनारे सड़क के
या गाँव के –

दिन भर उजाले तक – –
खेलते हो द्यूत – –
ढलते शाम– –
चढ़ाते हो – –
मदिरा के जाम – –
या ठर्रा पी हो मस्त –
करो तुम – – घर में
छोटी झोंपड़ी में – ऊधम !
दिनभर – जुटाती जीविका
वो यौवना –
कर रही – – वो इन्तज़ार –!
और तुम करो –
उसी से – – ताड़ना, प्रताड़ना
देह – वासना, तन यातना –
अकारण , अकारथ –
और वो बेचारी
रोती सुबकती –
कितनी लाचारी–
कब है जाती डूब– –
सपनों में
सुनहले पलों में – – क्यों ?
सुबह उठ– – फिर– चलेगी
भोर फूटे – –
दराँती उठाए –
टोकरी सर पर टिकाए
उसी निर्मम जीविका चक्र में – –

जिसका नहीं दिखता– – कोई – –
ओर – – ना कोई छोर – –
कब तक रहेगी
इन्तज़ार – –
कब उगेगा भोर– –
जब तुम–– यौवना–
तुम सब– – बहोगी–
बहार सी–
लहलहाती वादियों में – –
संग ले पिया का साथ – –
सुमधुर – – सहवास–!!

(डीडीहाट जाते हुए – – पथ पर)

* * *

ओ, कौसानी !!

ओ कौसानी–
उस
उतुंग शिखर से
उतुंगतर शिखर की
हिम– रंजित चोटियो –
मैं– –
तुममें – जन्मा नहीं
जीया नहीं –
तो भी
कहीं ना कहीं –
मैं तुमसे
हूँ जुड़ा – –
तुमसे बना हूँ – – !
देख तुम्हें– –
होता है – –
आभास–
अनायास
कि मेरा मन तुममें
रमा रहा–
निर्झरों के जल से –
नदियों के नीर से –
तुम्हें छूता रहा– –!
तुम आत्म–जयी हो – –
तुममें है समावेश

उन अनगिनत भावों का
उद्गारों का - -
जो तुम्हें देख
पड़ते तो हैं उमड़ -
पर
कलम से बहते नहीं -
तुम तो
कालजयी हो - -
तुम्हारे साथ
हो जाएँ-
ये भाव हों - चिरन्तन -
एक स्निग्ध स्पर्श में
जाएँ खो - -
अमरत्त्व लिए - -
तुम्हारी
सुखद, स्पन्दित
अनुभूतियाँ लिए - - !!

□□□

खण्ड चार

नीड़

ढलता सूरज

मेरे सामने की सड़क पर
ढलता सूरज
किसी अनचाही फिसलन
का इशारा है ?
वो धीमी सी ढलती लालिमा
कैसे सरकती है
सुरमई अंधेरों में – !
वो फैली रानाई
भी कितनी इतराई,
ओढ़ रही है चादर
ज़र्दी की ।
किस अजाब का
अनजाना अक्स है ये –
किस कल्पना की
परिणति
या कालिमा का
पूर्वाभास –
समेटता अपने पंखों को
जर्जर , क्लान्त
चतुर्मास !!

□□□

वो पल हों कितने मधुर– मधुर

वो पल हों कितने मधुर– मधुर
जब तुम दिखती हो थकी थकी–
वो युगल नयन विश्रान्त विहग,
अर्द्धोन्मीलित – खामोशी,
कितनी कर जाती उथल पुथल,
मेरे अन्तस् के सिन्धु में !!
वो चंचल छायामयी छवि
विचरती जैसे डिगी डिगी,
ज्यों शाम ढले सरसिज सिमटे,
और ठिठके यौवन आँखों में ,
कैसे छलकें वो पैमाने , कि
कूल पलक से बह जाएँ !!
वो क्लान्त देह की मादकता,
ज्यों सुरभित कलिका लदी लदी,
झुक जाए भ्रमर की गुँजन से ,
और दुबकी अपने आँचल में ,
डोले वो इत–उत बौराई सी ,
उन्मन उन्मन भी जाए ठगी !!
वो पुलक भरी फैली पूनों ,
ज्यों सिमट जाए इक बदली में ,
मुरझाएँ पाँखे पाटल की ,
जब करे शमन उसे आतप भी,
सिमटी सकुचाई अधरों की ,
वो लगे उदासी प्यारी सी !!
वो सूखे कूल किसी नदिया के ,
जिनमें सिमटा हो आलोड़न ,

कैसे फैलें वो अलग अलग
अतृप्त पिपासा में जलकर
और दुराव तुम्हारी बाहों का,
उन्मुख करता हर उतार - चढ़ाव !!

□□□

आज दिल में कोई तो लहर होती

आज दिल में कोई तो लहर होती–
इस शब की कोई तो सहर होती।

हम–नवां मिलकर भी हम तन्हां रहे –
इन दूरियों की कोई तो खबर होती।

इन्तज़ार करते रहे खुल्द का हम–
इस हश्र की कोई तो हद होती।

ज़माने से रहेंगे कब तक खफ़ा,
काश यह ज़िन्दगी ही मुख़्तसर होती।

अब तो जुम्बिश भी नहीं है पैरों में,
इस सफ़र की कोई तो मन्ज़र होती॥

हर मंदिर का दर मिला बन्द हमें,
इस नारसा की कोई तो इबरत होती।

गमे – तुगियानी ही है तेरा मुकद्दर –
काश 'माहताब' चिराग सी तेरी हसरत होती॥

* * *

तहज़ीब है कहाँ

अहले- इल्म हैं सब तरफ, तहज़ीब है कहाँ-
वफाए- दरो- दीवार की, दहलीज़ है कहाँ-?

आँख बन्द कर लें, या आँखों को खोल लें -
हर तरफ़ है तू ही तू, तेरी तामीर है कहाँ ?

इन्सानियत के नाम पर, वहशी बने इन्साँ,
आज के इस दौर में, लबे-इबरत है कहाँ ?

मज़हब के पेचों खम से, हम ना वाकिफ़ ही सही,
नासेह से तो पूछें, है आखिर खुदा कहाँ ?

आए तेरे दर पे, दर से चले गए-
इस फ़रेबे-उल्फ़त की, मन्ज़िल है कहाँ ?

तुम तो 'माहताब' अब, खुद ही पीए रहो -
मुफ़सिली के दौर में, है ज़िन्दादिली कहाँ ?

□□□

तुम जहाँ भी गए

तुम जहाँ भी गए, जाकर बदल गए–
चली हवा जिस तरफ, चले उधर गए।

होता है कुछ तो अपना, ज़हन भी ज़मीर भी,
हर रह– गुज़र पर जब गए, सौदा किए गए।

कुछ ज़िन्दगी से शिकवा, ना किया आज तक,
इनायत तुम्हारी ग़ाम दो, जो साथ तुम गए–।

चमन आरज़ू के, दिल में लिए बहुत,
रंजिश क्यों कर कीजिए, जो अध खिले गए।

माना तुम्हारी बज़्म में, दाना है बहुत मगर
चन्द लफज़ जो हम कहें, ना पहले कहे गए।

दुश्वारियाँ तो बहुत हैं, राहे ज़िन्दगानी में,
वो क्या हुआ जो हर जगह , मकतल बने गए।

तूफानों में 'माहताब' तुम जलते रहे चिराग़,
तुम जिस भी राह पे गए, तूफां बने गए॥

☐☐☐

बेटी के जन्म–दिवस पर

मन्नतें कितनी दुआएँ, माँग कर तुमको लिया–
ओ शुगूफ़ा चमन की, मुस्कुराओ तुम सदा॥

अदब की जब बात आई, नाम तेरा सबने लिया–
शालू शालू बोलकर, बाहों में सबने भर लिया॥

तुमने सबके दिलों में, अठखेलियों से घर किया–
हर किसी ने तुमको चाहा, पारियों से भर दिया॥

असीम की अनुपम कृपा है, असीम निधि तुममें है,
तुम्हारी शीतल चाँदनी ने, प्राँगण हमारा भर दिया॥

सागर सी तुम हो गहन, मौन हो तुम झील सी,
समेट अपने ज़हन में, तूफानों ज़लज़लों को लिया।

एकाकीपन के बोझ को, मुस्कानों से तुमने हर लिया,
तेरी ही छवियाँ देखकर, बलाएँ लेते हम सदा॥

चन्द्रिका है तू अमित, प्राण – स्पन्दन तू सदा
तेरी ख्याति जगत में, प्रसरित हो सर्वदा॥

□□□

प्रभु से मैंने कहा

प्रभु से मैंने कहा–
ए नाथ , इक वरदान दो–
एक गुड़िया अनुपमा दो –
कलियों की मुस्कान दो–।
चंचला सी चपल और
प्रकृति का अनुदान दो –
निर्झरों की किल्लोल हो ,
और स्मिति ही पहचान हो ।
अलौकिक हो वो अप्सरा सी
दृष्टिं प्राणवान हो –
इन्द्रधनुषी अठखेलियाँ हो –
खगों की उड़ान हो –।
माँ की वो लाडली हो
दीदी की वो प्राण हो –।
एक प्रातः मुझपर कृपा के
प्रसाद की वर्षा हुई –।
स्नेह – संजोए हृदय में
सुरभि की सृष्टि हुई–।
जीवन में आनन्द की
लहरें उमंगें छा गईं–
प्रकृति की अनुपम छटा
हर हृदय को ही भा गई ।
प्रभो इस प्रसाद की
सुरभि प्रसरित हो जगत में –
अनगिनत वर्षों तलक
उसकी छटा हो फलक में।

मैं उसे निहार कर
शीतल आनन्द लेता रहूँ–
वो रहे मन में सदा
और मैं उसमें रमा रहूँ॥

□□□

एक दबा – सा गीत

दबा सा गीत–
है कुलबुलाता,
सरसराता,
अन्तस् में – प्रतिपल !
कौन सा वो
भेद्य – गाण्डीव,
उसके स्त्रोत को
करे प्लावित–
कि फूट जाए
अजस्र धार –
गीत बनकर।
कौन सी वो
उर्वशी,
रूप लावण्य से
बाँध जाए
अलक – पाश में –
कि जाग जाए
अनंग – सुप्त– ज्वाल –
और
प्रवहित हो –
गीत की वो
अविरल धार।
आज मेरा गीत
दबकर ही जीएगा–

सुधा जिनके
आंसुओं में
बह रही है
अनवरत -
उनके दर्द को पीयेगा-।
आज यह
शिव का -
विकराल - रूप
किए धारण
ताण्डव करेगा-
निराश्रित,
निरावरण
देहों के जीवन का
गरल पीयेगा-।
यही है, तब,
मेरा, गीत - -
जो दबकर भी
जीएगा !!

□□□

सेतु – कितने सेतु !

हम हैं गुज़रते –
रात दिन –
आठों पहर
कितनी ही राहों से –
दुरूह , दुस्तर
मार्गों से , पगडण्डियों से
सड़कों से , राजमार्गों से ।
हम करते हैं
कितने पार
ये छोटे आयाम–
गौण, नगण्य, अनजान–।
जोड़े हुए हैं
जिन्हें–
सेतु–
बँधे सेतु, जुड़े सेतु !!
वो –
दोनों पार
दोनों कूल
बाहों में समेटे
समस्त बहाव–
रहते हैं पड़े –
जन्मान्तरों से
कितना अलगाव –!

हम रहते हैं
खड़े किनारे
अटपटे से –
आहूत –
अहम् के प्रहार से !
सेतु–
इनको बाँधते हैं –
सेतु
हमको बाँधते हैं –।
कितने ही सेतु
उगते हैं सहज ही –
और
जोड़ देते किसी
चिरन्तन सत्य में !
सेतु क्रम भी है
कितना अनवरत –
पल, प्रतिपल
सेतु बनते
ढह जाते –
और विश्वास पनप
कर रह जाते
फिर
नये आयाम
मुखर आते – –
उभर जाते
पनप जाते – –

ये सब – –
क्रम – अनुक्रम
है निरन्तर – –
सेतु बनना, ढह जाना
या
बनने से
पहले ही
किसी विराट
प्रवाह में बह जाना !!

□□□

कैसे मानूँ

मैंने
नयनोन्मीलन में निहारा–
उस अरूणाई को –
जो
प्राची से फूट पड़ी थी
प्रथम मिलन की तरह !
कैसे मानूँ
वो तुम ही हो !
जो
चपल सी धारा बन
बहती हो
दुर्गम निर्जन में –
किसी आशा की तरह –!
कैसे जानूँ
वो तुम ही हो
जो
पीले फैले खेतो में
बिफरी हो
जीवन की
मधुर मुस्कान की तरह !
कैसे देखूँ–
वो तुम हो
जो

खनक जाती हो
पल्लव में अनल की तरह–
मन के किसी
अन्तरंग कोने में !
तुम –
वो ही खनक
वो ही अनुस्वार
वाणी का सम्मोहन –
वो ही अरूणा
वो ही आशा
वो ही मधुरिमा
संजोए–
बैठी हो – पैठी हो –
हर पल में –
पल पल के
माध्यम में
और मेरे मन –
मेरे अपनेपन के
बीच की परत में –
वो तुम हो
सर्वदा,
सुखद, सत्य, विद्यमान् –!
ये सब
मैंने जाना
जब स्वयं को
मन से
अलग पाया !!

□□□

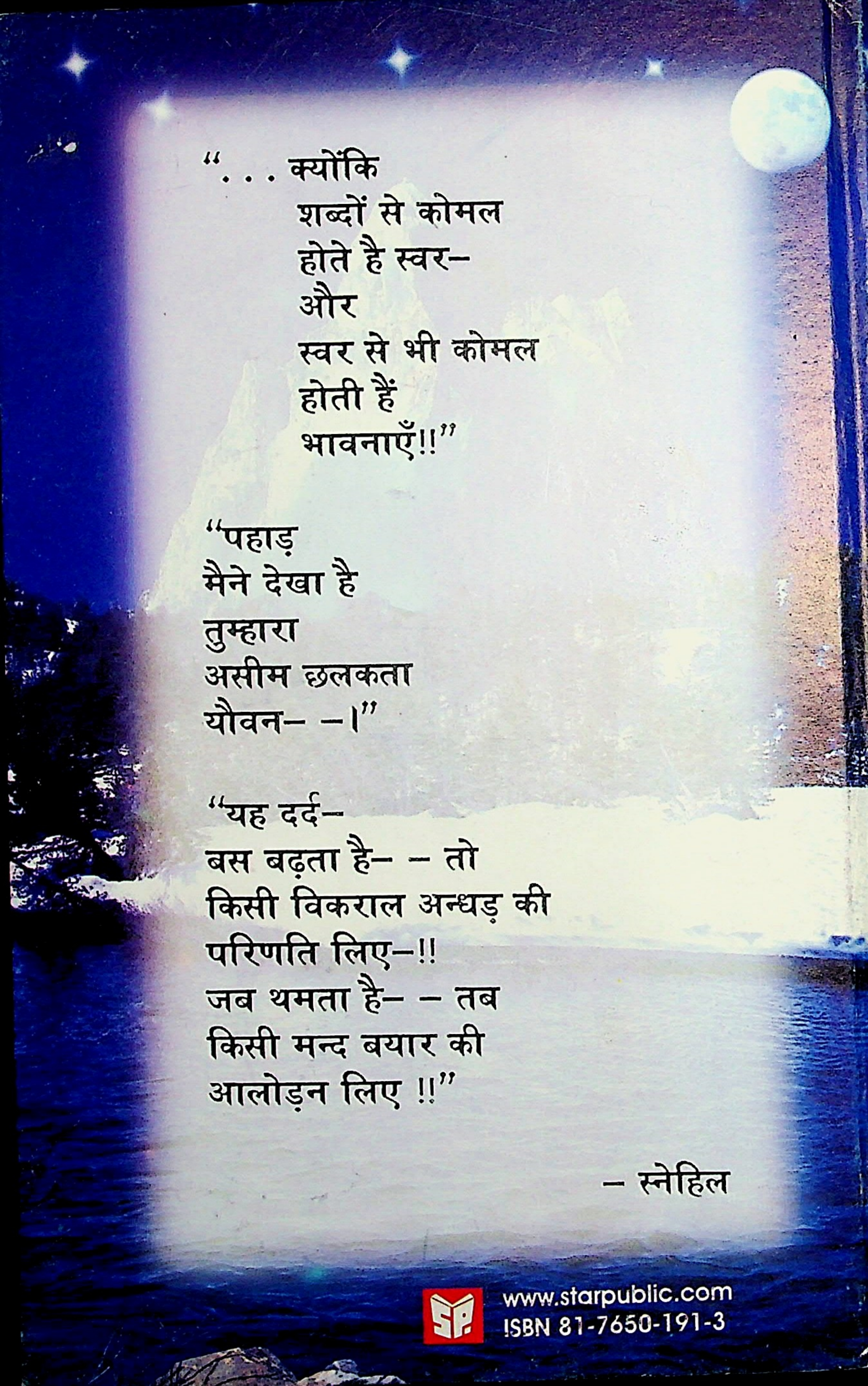

"... क्योंकि
शब्दों से कोमल
होते है स्वर–
और
स्वर से भी कोमल
होती हैं
भावनाएँ!!"

"पहाड़
मैने देखा है
तुम्हारा
असीम छलकता
यौवन– –।"

"यह दर्द–
बस बढ़ता है– – तो
किसी विकराल अन्धड़ की
परिणति लिए–!!
जब थमता है– – तब
किसी मन्द बयार की
आलोड़न लिए !!"

– स्नेहिल

www.starpublic.com
ISBN 81-7650-191-3